27

विवेकानन्द वेदान्त चिन्तन

ध्यान दें:

भारतवर्ष आध्यात्मिकता की भूमि है। वहाँ पर समय-समय पर बहुत धर्म सम्प्रदायों की तथा दर्शन सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई है। भारतीय दर्शनों में वेदान्त दर्शन प्रमुख स्थल रहा है। उस दर्शन के बहुत से सम्प्रदाय तथा बहुत सी व्याख्याएँ वेदान्तदर्शन वस्तुत: साक्षात् उपनिषदों का आश्रय लेकर के स्वयं दर्शन के सिद्धान्तों को प्रस्तुत करता है। भले ही सभी वेदान्त सम्प्रदाय उपनिषद् को प्रमाणत्व के रूप में स्वीकार करतें है फिर भी उपनिषदों में उनका सूक्ष्म रूप भेद होता है। उससे सिद्धान्तों में भी बहुत से स्थलों में उनेक स्वभाविक भेद दिए गए है। वेदान्त दर्शनों में भी परस्पर मतभेद प्रसिद्ध ही है। लेकिन मतभेद होने पर भी सभी वेदान्त दर्शन एक ही परमेश्वर का निर्देश करते है। सभी दर्शन मार्गों के द्वारा एक ही परमेश्वर विविध रूपों में बताया गया है। श्रीरामकृष्ण का जीवन देखकर के विवेकानन्द ने समझा है। श्री रामकृष्ण ही उस प्रकार के साधक थे जिनके जीवन में द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत इस प्रकार के सभी तत्व परस्पर विरोध बिना ही रहते हैं। इस प्रकार उनके उपदेश से तथा जीवन से प्रभावित होते हुए विवेकानन्द ने शास्त्रों का आश्रय लेकर के (प्रधान रूप से उपनिषद् तथा भगवद्गीता का आश्रय लेकर के) श्री रामकृष्ण के समन्वय भाव का प्रचार किया। श्री रामकृष्ण के द्वारा प्रभावित उनके इस प्रकार वेदान्तव्याख्यान जैसे अध्यात्ममार्ग में चलने वालों के बहुत सारे संशयों का निराकरण करके नि:संशय उनको अध्यात्ममार्ग की प्रेरणा देने वाले हुए। वैसे ही प्रायोगिक जीवन में भी उपयोग लिए प्रेरणादायी सिद्ध हुए। उससे आधुनिक विज्ञानयुग में वेदान्त के अभिनवरूप के द्वारा इस प्रकार के व्याख्यानों को सभी दर्शन जिज्ञासुओं के द्वारा अवश्य ही ध्यान पूर्वक समझना चाहिए। विवेकानन्द ने वेदान्त के इस प्रकार के महात्म्य को जो व्यवहारिक तथा आध्यात्मिक जीवन का समझकर के तथा व्यवहारिक जीवन में इसका प्रयोग किस प्रकार से हो इस स्पष्टता का भी निरूपण किया।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- विवेकानन्द के विषय में सामान्यज्ञान प्राप्त करने में;
- विवेकानन्द के दर्शन के विषय में विस्तार से जान पाने में;
- विवेकानन्द के दर्शन में श्री रामकृष्ण का प्रभाव समझने में;

पाठ-27

विवेकानन्द वेदान्त चिन्तन

ध्यान दें:

- विवेकानन्द का सेवा भाव जानने में;
- योग चतुष्टय में विवेकानन्दकृत समन्वय को जान पाने में;
- अन्य दर्शनों से भी विवेकानन्द दर्शन का वैलक्षण्य जानने में;
- अपरोक्षानुभूति किस लिए होती है तथा अध्यात्म प्रपञ्च में प्रमाणों के विषय में ज्ञान प्राप्ति करने में;
- विवेकानन्द प्रदर्शित योग चतुष्टय के विषय में ज्ञान प्राप्त करने में;
- आधुनिक काल में विवेकानन्द का वेदान्त दर्शन किस लिए आवश्यक है यह जान पाने में;

27.1) विवेकानन्द कौन है?

स्वामी विवेकानन्द का परिचय आधुनिक भारतवर्ष में प्राय: सभी को है। १८६३- ईस्वी शताब्दी में जनवरी मास की 12 दिनाङ्क को जन्म लेने पर इनका नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनके आध्यात्मिक श्रीरामकृष्ण थे। गुरु से संन्यास दीक्षा प्राप्त करके परिव्राजक जीवन का निर्वहन करते हुए भारतवर्ष के विविध स्थानों में घूमते हुए धर्म प्रचार करके १८९३ ईस्वी सन में शिकागो नगरी में अनुष्ठित धर्मसम्मेलन में भाग ग्रहण करके वहाँ पर सनातन धर्म का महत्व उद्घोष करके जगत में प्रसिद्धि प्राप्त करी। वहाँ से उन्होंने सनातन धर्म का विशेषत: वेदान्त का प्रचार करके समग्र मानवजाति के लिए उन्नति का विधान करने की चेष्टा की। उनके मुख में वेदान्त वाणी ने सजीवता को प्राप्त करके जनमनस में नया रूप धारण कर लिया उन्होंने जिस वेदान्त का प्रचार किया वह वेदान्त इस प्रकार से सम्बोधित होता है।

27.2) विवेकानन्द वेदान्त दर्शन क्या है

भारतीयशास्त्रपरम्परा में न्याय तथा ग्रंथों दार्शनिकों की तथा दार्शनिकतत्वों की समुत्पत्ति हुई। उनमें छ आस्तिकदर्शन जैसे न्याय वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वोत्तर, मीमांसा तथा सांख्य प्रसिद्ध थे। इन में फिर उत्तर मीमांसा ही द्वैत, विशिष्टद्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, अचिन्त्य भेदाभेद शैवविशिष्टाद्वैतादि अलग अलग मत वाले हो गये। काल क्रम से समागत तत्त्वविदों के मत भी उस प्रकार के वेदान्तचिन्तनों के अन्तर्गत ही होते है। जीव ब्रह्म जगत माया इत्यादि विषयों का आश्रय लेकर के उत्तर मीमांसा दर्शन प्रवृत्त हुआ है। विवेकानन्द का वेदान्त दर्शन भी अब सनातनधर्म के द्वारा एकीभूत हो गया है। वेदान्त वाक्यों को हम सामाजिक जीवन तथा व्यवहारिक जीवन में किस प्रकार से प्रयोग करें इसका पूर्ण रूप से वर्णन कर के उन्होंने इसे अपने जीवन में भी धारण किया। भारतवर्ष की आध्यात्मिक शक्ति को उन्होंने अपने जीवन में अपनाया तथा सम्पूर्ण विश्व में उसका विस्तार किया जिससे वह मानवों के बोधगम्य तथा तथा अपने जीवन में पालन के लिए उपयोगी है। इसिलए विवेकानन्द दर्शन वेदान्त का कालोपयोगिता के द्वारा प्रायोगिक व्याख्यान है।

पाठगत प्रश्न 27.1

1. विवेकानन्द का बाल्यकाल मे क्या नाम था?
2. विवेकानन्द के आध्यात्मिक गुरु कौन थे?
3. विवेकानन्द के द्वारा प्रचारित दर्शन का नाम वेदान्त दर्शन किस लिए हुआ।

ध्यान दें:

4. विवेकानन्द का जन्म दिवस कब होता है?

5. किस ईस्वी सन् में विवेकानन्द ने शिकागो नगर में विश्व धर्म सम्मेलन में योगदान दिया।

6. विवेकानन्द के द्वार प्रचारित वेदान्त का क्या अभिधान है।

27.3) विवेकानन्द दर्शन में श्रीरामकृष्ण का प्रभाव

सबसे पहले तो यह जानना चाहिए की विवेकानन्द के वेदान्तचिन्तन में उनके गुरु श्री रामकृष्ण का महान प्रभाव था। श्रीरामकृष्ण के प्रधान शिष्य विवेकानन्द ही गुरु के वार्ता के प्राचारक थे। भावी पथ प्रदर्शक के रूप में श्री रामकृष्ण ने उनको ही निर्मित किया था। श्रीरामकृष्ण के देहत्याग के बाद भी विवेकानन्द उनसे मार्ग दर्शन लेते रहे थे। भले ही वह स्वामी रामकृष्ण के विषय में बहुत कम ही कहते थे। फिर भी उनका समग्र जीवन श्रीराम कृष्ण के जीवन से प्रेरित था। एक बार तो उन्होंने यह कहा था कि यह में जो कह रहा हूँ वह स्वामीरामकृष्ण के ही शब्द है- "यत्सर्वं भावम् अहं कथयामि, तत्सर्वम् एव तस्य (रामकृष्णदेवस्य) चिन्ताशेः प्रतिध्वनिकल्पम। अनुत्तमान् विहाय एतेषाम् एकोऽपि मदीयो नास्ति। सत्यभूतं कल्याणकरं च यत्सर्वं मया उच्चरितं, सर्वमेव तस्य वचनस्य प्रतिध्वनिमात्रम्।" (स्वामिविवेकानन्दस्य 'वाणी ओ रचना')

इससे यह मानना चाहिए की श्री रामकृष्णदेव का जीवन तथा उनके उपदेशामृत को जिस प्रकार से लोग ग्रहण कर सके उसके लिए विवेकानन्द ने प्रयास किया। विवेकानन्द किसी सम्प्रदाय के प्रतिष्ठा कारक थे अपितु वे तो नए भारत के आध्यात्मिक मार्ग के प्रदर्शक रूप थे। नवयुग के अवतार के रूप में विवेकानन्द ने रामकृष्ण को अवतार के रूप में देखा था। उन्होंने एक पत्र में कहा भी था। यह व्यक्ति (रामकृष्णदेव) ने इक्यावन वर्ष के जीवन में पाँच हजार वर्ष का जीवन व्यतीत किया। इस प्रकार से विवेकानन्द के जीवन में रामकृष्ण का सायुज्य देखा जाता है।

27.4) वेदान्त आधारित दर्शन प्रचार का कारण

भले ही श्रीरामकृष्ण के प्रभाव का प्रचार ही विवेकानन्द का उद्देश्य हुआ फिर भी वेदान्त दर्शन का आश्रय लेकर के विवेकानन्द ने अपने दर्शन का प्रचार किया इसका कारण यह है कि उनके मन में यह था की रामकृष्ण के प्रभाव को विश्व जाने इसलिए विश्व को पहले एकसूत्र में बाँधना जरूरी है। तो वेदान्त दर्शन ही एक ऐसा दर्शन है जो सभी के लिए उपकारी हो। जो हजारों वर्षों से सनातन धर्म के मूल को बचाए हुए है। स्वामी विवेकानन्द ने देखा उनके गुरुदेव ने न केवल वेदान्त दर्शन परीक्षण करके प्रमाणित किया अपितु उन्होंने वेदान्त के सारगर्भित धर्मीप्रयोजन के अशों को अलग करके अपने जीवन के माध्यम से व्यवहारिक प्रयोग को सिद्ध करके वेदान्ततत्व को आधुनिक काल में उपयोगी बनाया। इसलिए विवेकानन्द ने 'जीवन के कर्म में वेदान्त' इसका प्रचार किया। उनका उपजीव्य श्रीरामकृष्ण का जीवन था इसलिए विवेकानन्द के दर्शन का मूलभूत तत्व श्रीरामकृष्ण का जीवन ही है। इस प्रकार से श्री रामकृष्ण देव ने अपने जीवन में वेदान्त के तत्वों का प्रयोग किया। और विवेकानन्द ने वेदान्त के माध्यम से श्री रामकृष्ण के जीवन की व्याख्या की। इस प्रकार से यह परस्पर परिपूरक क्रिया ही श्रीरामकृष्ण तथा विवेकानन्द दर्शन की भित्ति है।

ध्यान दें:

27.5) सर्वस्तरीय मानवों की आध्यात्मिक अभ्युन्नति तथा उनके दर्शन का लक्ष्य।

मानवों की आध्यात्मिक अभ्युन्नति ही उनके दर्शन का लक्ष्य था। परिव्राजाक संन्यासी के रूप में भारत में भ्रमणकाल में लोगों की दरिद्रता तथा शिक्षा हीनता देखकर के स्वामी विवेकानन्द का मन दु:ख से निपीडित हो गया। उन्होंने समझा की भारत की अवनति का मूल कारण उद्योगियों की नीतियाँ, साधारण दरिद्रजनों का शोषण तथा उनके प्रति हेयदृष्टि तथा नारियों की अवहेलना है। उन्होंने यह भी प्रत्यक्ष किया की दरिद्रता होने पर भी सभी लोगों के जीवन में धर्म जीवन शक्ति के रूप में होता है। आध्यात्मिकता रूपी शक्ति ही सभी की केन्द्रभूत है। अत: आध्यात्मिक जीवन में शक्तिसञ्चार से ही इन जनों की फिर अभ्युन्नति तथा नया जीवन संचार हो। स्वामी विवेकानन्द जी का विचार था 'वेदान्त से परिचित भारतवर्ष के प्राचीन आध्यात्मिक दर्शन में इस प्रकार से बल सम्पन्न आध्यात्मिक तत्व निहित हैं। जिनका व्यावहारिक जीवन में प्रयोग से सभी जातियाँ फिर से जीवित हो सकती हैं। और पाश्चात्य देशों में जाकर विवेकानन्द ने देखा की जो वहाँ पर लोग हिंसा नीति हीनता तथा सामाजिक सङ्कटों से आक्रान्त है। इनके सङ्कटों का समाधान वेदान्त के तत्वों के द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार से विवेकानन्द का दृढ विश्वास था इसलिए स्वामी विवेकानन्द श्री रामकृष्ण के जीवन के माध्यम से तथा उन्हीं के वचनों के माध्यम से वेदान्त के शक्ति तत्व समूहों का जनसाधारणों के लिए प्रचार किया। जिसके द्वारा सभी की आध्यात्मिक उन्नति हो जाए।

27.6) समन्वय

अद्वैत वेदान्त के मत में ज्ञान ही केवल्य होता है। इसके अलाव और कोई रास्ते नहीं है। ईश्वर की आराधना के द्वारा,पूजन के द्वारा,योगमार्ग के द्वारा,तथा केवल्य प्राप्त नहीं होता है। द्वैत वेदान्त दर्शन के मत में भक्ति ही भगत्साक्षात्कार का कारण है। श्री रामकृष्ण का मत यह है कि जितने मत होते हैं उतने ही पन्थ होते हैं। इसलिए भगवत प्राप्ति के लिए भले ही बहुत से मार्ग हैं। लेकिन फिर सभी दर्शनों का साध्य एक ईश्वरतत्व साक्षात्कार ही है। सभी धर्म सम्प्रदायों का बौद्ध, जैन, मुहम्मद तथा अन्य ध र्मों का भी अन्तिम लक्ष्य मोक्ष ही है। और वह दु:खनिवृत्ति रूप तथा आनन्द प्राप्ति रूप होता है तथा बार बार जन्ममरण रूपी संसार चक्र से निवृत्ति रूप होता है ।वह ही ईश्वर आत्मा को बहुत प्रकार से प्रकाशित करता है। इसलिए एक प्रसिद्ध श्रुति वाक्य है। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ' इस प्रकार से मार्ग बहुत है। स्वयं के अधिकानुसार जिस मार्ग का आश्रय लेकर के जो ईश्वर प्राप्ति की इच्छा करता है। वह उसके द्वारा ईश्वर को प्राप्त भी कर सकता है। श्रीरामकृष्ण स्वयं सभी धर्मो के नियमों को पालते हुए इस प्रकार का निर्णय दिया। शिवमहिम्नस्तोत्र में यह कहा है-

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥ इति।

और यह युक्ति सम्मत भी है। सभी धर्मों में यह कहा गया है की अपने मन को कालुष्य से हटाकर के ईश्वर की आराधना के द्वारा तथा शुभकर्म के द्वारा उत्कर्ष को प्राप्त करके जीव को ईश्वर की प्राप्ति करनी चाहिए। कोई भी धर्म कुकर्म के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति का उपदेश नहीं देता है। यदि किसी धर्म का मार्ग ईश्वरतत्व का उपदेश नहीं देता है तो उन धर्म प्रवर्तकों का अनुभव भी मिथ्या ही है। इसिलए धर्म समन्वय ही युक्ति युक्त अनुभव गोचर तथा शास्त्रसम्मत होता है।

इस धर्म समन्वय को दर्शन तत्वों के समन्वय के रूप में भी कह सकते हैं। जिस प्रकार से अद्वैत विशिष्टाद्वैत तथा द्वैत मतों का समन्वय श्रीरामकृष्ण के दर्शन में प्राप्त होता है। श्री रामकृष्णदेव ने ही ब्रह्म

ध्यान दें:

का निराकार निर्गुण अव्यक्तादिरूप स्वीकार करते हुए उसके साकार अनन्तमयादि गुणों को भी स्वीकार किया है। उनके मत में ईश्वर साकार तथा निराकार है और साकार तथा निराकार से भिन्न भी है। वह पूर्ण रूप से इस प्रकार का ही है ऐसा भी नहीं कह सकते है। ईश्वर का आनन्त्य परिमित बुद्धि वाले मानव सोच नहीं सकते है। जैसे चींटी शक्कर के एक कण को मुख में रखकर के ले जाती है। फिर सोचती है अगली बार आकर के पूर्व पर्व ही ले जाऊंगी। इस प्रकार से साधक भी ईश्वर के एक रूप का साक्षात्कार करके उसके एकमात्र स्वरूप का ही चिन्तन करते हैं। वस्तुत: ईश्वर के अनन्त रूप हैं। वह साधक भेद से अपने को भिन्न रूपों में प्रकाशित करता है।

दर्शन तत्व की दिशा में वेदान्त में दो प्रकार के ब्रह्म के रूप उपलब्ध होते है सोपाधिक ब्रह्म तथा निरूपाधिक ब्रह्म। ये ही सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म के रूप में माने जाते है। एक ब्रह्म के दो रूप होते हैं इसलिए ये भिन्न होते है। आचार्य शङ्कर के द्वारा उनके विषय में यह कहा जाता है की दो रूपों में ही ब्रह्म को समझना चाहिए। वह नामरूप विकार आदिभेद से उपाधि विशिष्ट तथ उसके विपरीत सभी उपाधियों से विवर्जित होता है। सगुण सोपाधिक ब्रह्म उपास्य ब्रह्म होता है। निर्गुण ब्रह्म ज्ञानमात्रस्वरूप होता है। वह प्रत्यक्ष आत्मा के द्वारा अनुभवमात्र गम्य होता है। इन दोनों में नाम मात्र भेद होता है। वस्तुत: उन दोनों में अभेद ही होता है। इसलिए शङ्कराचार्य का वचन है। एक ही आत्मा नाममात्र के भेद के द्वारा बहुत प्रकार से समझी जाती है। ईश्वर के साकारत्व तथा निराकारत्वप को समझने के लिए श्री रामकृष्ण देव के द्वारा एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वह कहते है कि ईश्वर साकार भी है तथा निराकार भी है तथा वह दोनों से भिन्न भी है। उसका उत्कर्ष किसी के द्वारा भी नहीं जाना जा सकता है। साकार कैसे है तो कहते हैं कि जैसे जल तथा बर्फ होता है। जल ही घनीभूत होकर के बर्फ बन जाता है। हिम में अन्दर तथ बाहर जल ही होता है। जल बिना हिम नहीं होता है। लेकिन देखा यह जाता है कि जल का कोई निश्चित आकार नहीं होता है।और हिम का निश्चत आकार होता है। इसी प्रकार से भक्ति रूप शैत्य के द्वारा अखण्डसच्चिदानन्दसागर जल रूप में घनीभूत होकर के भिन्न भिन्न आकार को प्राप्त कर लेता है।

(श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसङ्ग, प्रथम भाग, गुरुभाव-पूर्वार्ध)

और तो उसका अन्त भी सङ्गत नहीं होता है। वह निराकार होता है तथा साकार भी होता है। भक्तों के लिए वह साकार होता है। प्रपञ्च को स्वप्न के जैसा मानने के लिए वह निराकार होता है। जैसे सच्चिदान्द ब्रह्म समुद्र के रूप में होता है जिसका कोई पार नहीं होता है। लेकिन वही ब्रह्म भक्तो के लिए जैसा जल से बर्फ बनता है उसी प्रकार से वह भक्तों के लिए सगुण साकार विग्रह बन जाता है।

स्वामी विवेकानन्द ने सामाजिक समस्याओं के सामाधान के साथ वेदान्त के विषय में भी दो प्रधान कार्य संशोधित किए वे हैं वेदान्त का आधुनिक करण तथा ऐक्य साधन। उनकी बीच बीच में नूतन व्याख्यान रीति भी बताई है। वेदान्त का सारभूत तत्व युग प्रयोजन के द्वारा तथा आधुनिक भाषा के द्वारा और भाष्य के द्वारा उन्होनें प्रकाशित किया जो मानवों की जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए उपयोगी है। वेदान्त की बीच-बीच में नई व्याख्याएँ भी उनके द्वारा दी गई। वेदान्त का सारभूतत्व युगप्रयोजन के द्वारा तथा आधुनिक भाषा और भाष्य के द्वारा उनके द्वारा दिया गया। जो मानवों के जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए उपयोगी है। तथा वेदान्त तत्त्वों के आभ्यन्तरीकरण और ऐक्यसाध न रूपी महान कार्यों में भी अन्यतम है। वेदान्त में प्रधान रूप से द्वैत-विशिष्टाद्वैत अचिन्त्यभेदाभेदा अभिधेय तत्व है। उन उनके सम्प्रदाय के लोग उन मतों को यथार्थ मानते हैं अन्य सब मिथ्या मानते हैं। इन के द्वारा परपस्पर विरोधिमत प्रकाशकत्व से वेदान्त का प्रामाण्य सभी लोगों के लिए ग्राहित्व नहीं हुआ। यह भी सत्य है की जिस आध्यात्मिक विकास का स्तरभेद प्रतिव्यक्ति के अनुसार यदि अलग अलग है तो वह सभी के लिए उपयोगी नहीं हो सकता है। कोई भी दर्शन सभी लोगों के लिए उपयोगी तभी होगा

ध्यान दें:

जब वह सर्वजनग्राह्यत्व हो जाएगा। अन्यथा नहीं। भारतवर्ष के पुनः जागरण के लिए हिन्दु धर्म के ऐक्यसाधन के लिए वेदान्त का साधन हमेशा अपेक्षित है। श्री रामकृष्ण का जीवन तथा उनके अनुभवों को देखकर विवेकानन्द वेदान्त सम्प्रदाय के उपदलीय मतों साधनों तथा मार्गों का आविष्कार किया। श्री रामकृष्णदेव ने निम्नस्तरीय क्रिया बहुल मूर्ति पूजार्चना आदि के द्वारा उच्चस्तरी द्वैतसाधन करके सभी प्रकर के आध्यात्मिक तत्वों को उपलब्ध करवाया। इससे उपलब्धिप्रज्ञाबल से यह सिद्धान्त द्वैत विशिष्टाद्वैत मत आध्यात्मिक उपलब्धि भिन्न-भिन्न स्तरों की द्योतक प्रतिसम्प्रदाय परम सत्ता सम्बन्धी जो मत है वह आध्यात्मिक उपलब्धि के उस उस स्तर में भी सत्य है। श्री रामकृष्ण के सदृश ही कोई जो सभी मतों से तथा सभी मार्गों से अतिक्रान्त है वह ही यह कह सकता है। इस विषय में एक उदाहरण बार बार दिया जाता है कर भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न समय में बहुत प्रकार के कृकलाश (कल्पद्रुमवृक्ष) देखकर के उसका वर्णन करते हैं। कुछ तो उसका वर्ण लाल बताते हैं कुछ उसका वर्ण हरा बताते हैं,और कुछ उसका वर्ण पीला भी बताते है। उसका यथार्थ भूत वर्ण क्या है इस विषय में विवाद करते हुए स्वयं के मत को ही यथार्थ मानते है। तब कोई व्यक्ति विशेष जो उस वृक्ष के नीचे रहता था। उसने कहा यह जो कृकलाश वृक्ष है यह कालभेद के द्वारा स्वयं के वर्णों में परिवर्तन करता है। कभी भी इसका कोई एक निश्चित वर्ण नहीं होता है। इस प्रकार से श्रीरामकृष्ण वेदान्त के किसी मतवाद विशेष को हिन्दुधर्म के सम्प्रदायविशेष के पक्षपात की दृष्टि से नहीं देखते थे। उनकी सभी मतों के ऊपर श्रद्धा थी।

श्रीरामकृष्ण परमहंस ने सभी सम्प्रदायों के मतों में समन्वय साधने का प्रयास किया। और इनमें अद्वैतत्व को ही सर्वोच्चस्तरीय उपलब्धित्व से देखते हुए उन्होंने अभ्यर्हितत्व के द्वारा उसका प्रचार किया। और उन्होंने कहा ही " मैंने एक ऐसे व्यक्ति का प्रत्यक्ष किया जो एकपक्ष में प्रबल द्वैतवादी तथा अपरपक्ष में एकनिष्ठ अद्वैतवादी, अन्यपक्षों में परमभक्त तथा परमज्ञानी है। इसलिए मैंने भी भाष्यकारों का अनुसरण किए बिना उत्कृष्ट रूप से उपनिषद्त्व तथा अन्य शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया, और अन्य शास्त्रों को समझने में समर्थ हुआ। हमारे द्वारा यह भी जानना चाहिए की एक ही सत्य को बहुत प्रकार से प्रकाशित किया गया है। प्रत्येक उस उसकी निर्दिष्ट सीमा के अन्तर्गत ही होता है। हमें लोगो को इस प्रकार से शिक्षित करना चाहिए की कोई भी विषय भिन्न भिन्न दृष्टियों के द्वारा सौ प्रकार से देखा जा सकता है। फिर भी वह विषय समान ही होता है"।

भले ही ऋग्वेदीय विषय समन्वय तत्व रूप में था फिर भी आधुनिक काल में श्रीरामकृष्ण के द्वारा ही प्रत्यक्षानुभूति के द्वारा इसकी सत्यता प्रमाणित की गई है। न केवल वेदान्त सम्प्रदायों का समन्वय अपितु भिन्न भिन्न धर्मों का भी समन्वय यहाँ पर प्राप्त होता है। इसलिए स्वामीविवेकानन्द जी के द्वारा कहा गया है।- "बुद्ध ने यह उपदेश दिया हैं की बहुत सत्य अहङ्कार मिथ्या, जो कठोर हिन्दु जन स्वीकार करतें है। वे एक ही सत्य को बहुत प्रकार से तथा मिथ्या मानते हैं। ऐसा उन्होंने श्री रामकृष्णपरमहंस से पूछा। उन्होंने उत्तर दिया है कि हाँ बिल्कुल सत्य है और एक ही सत्य वस्तु को एक ही मन के द्वारा भिन्न भिन्न काल में भिन्न भिन्न चित्त भूमि के द्वारा ग्रहण किया जाता है। " इति। "Did Buddha teach that the many was real And the ego unreal, while orthodoñ Hinduism regarosQ the OneAs the real,And the manyAs unreal?" the Swami wasAsked-'Yes'Answered the Swami- "And what Ramakrishna ParamahamsaAnd I haveAdded to this is, that the ManyAnd the OneAre the same Reality, perceived by the same mindAt different timesAnd in differentAttitudes-,& The Complete Works of Swami Vivekananda] Vol- 8- page 261- SayingsAnd Utterances- इसका यह अर्थ है की अद्वैत तथा द्वैत एक ही तत्व सत्य है, और मन का परम तत्व भिन्न भिन्न स्तरों में तथा भिन्न-भिन्न समयों में उपलब्ध होता है।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न 27.2

1. विवेकानन्द के दर्शन में किसका सबसे अधिक प्रभाव था?
2. शिवमहिम्न स्तोत्र में समन्वयपरक श्लोक का क्या अंश है?
3. विवेकानन्द के द्वारा प्रचारित दर्शन का क्या लक्ष्य है?
4. श्री रामकृष्ण के मत में ईश्वर का स्वरूप क्या है?
5. दर्शनतत्व की दिशा में वेदान्त में किन दो प्रकार के ब्रह्म का रूप उपलब्ध होता है ?
6. एक ही ईश्वर स्वयं बहुत प्रकार से प्रकाशित करता है यहाँ पर श्रुति का क्या प्रमाण है?

27.7) अपरोक्षानुभूति आध्यात्मिक सत्य समूह का परम पुरुषार्थ

वर्तमानकाल में श्रीरामकृष्ण के मत को मनुष्यों के श्रद्धा के लिए तथा उसका पुन: उद्धार तथा ईश्वर लाभ ही जीवन का परमलक्ष्य है इस प्रकार के तत्व कि उन्होंने फिर से प्रतिष्ठा की। युवा नरेन्द्रनाथ अज्ञेयवादसमाच्छन्नचित्त होते हुए उन्होंने बहुत आचार्यों से पूछा की क्या आप लोगों ने ईश्वर को देखा है। तो सभी ने मना कर दिया। लेकिन जब यही प्रश्न उन्होंने रामकृष्ण से पूछा तो उन्होंने कहा हाँ देखा है। जैसे तुझे देखता हूँ उसी प्रकार से ईश्वर को भी देखता हूँ। श्री रामकृष्ण के इस प्रकार के वचन को सुनकर के नरेन्द्राथ का ईश्वर में दृढ विश्वास भी हो गया। श्री रामकृष्ण परमहंस ने अपरोक्षानुभूति लोभ ही मनुष्यजीवन के उद्देश्य के रूप में प्रतिष्ठापित किया। न केवल वही अपितु उनके द्वारा अपितु उनके द्वारा कही गई अनुभूति ही। ईश्वर तथा आध्यात्मिक प्रपञ्च की इन्द्रियातीत सत्य समूहों की वह प्रमाणभूत हुई। स्वामी विवेकानन्द के द्वारा भारत में तथा पाश्चात्य देशों में भी गुरु की अपरोक्षानुभूतिलाभरूप आदर्श प्रचारित किया गया है। श्री राम कृष्ण के आगमन से पहले लोग विश्वास द्वारा ही सदाचार तथा नैतिक उपदेशों को धर्मत्व के रूप में मानते थे। विवेकानन्द ने ही धर्म के चरमतत्व की उपलब्धि के रूप में निर्घोष किया " धर्म जीवन में उपलब्धि का विषय है वह केवल श्रवण को, सुनकर के स्वीकार करने का विषय नहीं है " धर्मी दर्शन विषय में प्रत्यक्षानुभूति ही आवश्यक होती है। आधुनिक समय में अनेक लोग इस वेदान्त दर्शन के तत्व को स्वत: सिद्ध को रूप में चिन्तन करते है। वस्तुत: वेदान्तदर्शन के पराम्परागत आचार्य आगम तथा श्रुति को ही चरमप्रमाणत्व के रूप में स्वीकार करतें है। न की अपरोक्षानुभूति को। लेकिन शङ्कर के अद्वैतदर्शन में अपरोक्षानुभव ही प्रमाणत्व के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार से जीवन्मुक्ति की प्रतिष्ठा प्राप्ति करने के काल में उनके द्वारा कहा की यदि जीवन्मुक्ति को स्वीकार नहीं करतें है तो सभी मोक्ष शास्त्र अविद्वान् पुरुष के द्वारा लिखे गये है तथा उनका प्रामाण्य भी नहीं है। इसलिए शास्त्रों को अनुभवसिद्ध लोगों के द्वारा लिखे गये के रूप में स्वीकार करना चाहिए। उनके द्वारा अपरोक्षानुभव का प्रामाण्य ही अद्वैतदर्शन में स्वीकार किया गया है। इस प्रकार से यह निश्चित हो चुका है। यहाँ पर यह जानना चाहिए की आध्यात्मिक प्रपञ्च में अपरोक्षानुभूति ही लक्ष्यभूत तथा प्रमाणभूत है। फिर भी शास्त्रोक्तश्रद्धा विश्वास तथा नि:स्वार्थपरतादिगुण तथा रीतियाँ अवश्य पालनीय है वे हेय नहीं है। अनुभूति भी शास्त्र विरुद्ध नहीं होनी चाहिए अपितु वे यथार्थानुभूति शास्त्रसम्मत ही होनी चाहिए। उनके द्वारा सभी परमत्व अनुभवयुक्त साधक तथा महापुरुषों की अनुभूति ही प्रमाणभूत होती हुई शास्त्र के द्वारा अविरुद्ध होती है।

ध्यान दें:

27.8) योगचतुष्टय

कर्मयोग ज्ञानयोग भक्तियोग तथा राजयोग इस प्रकार से ये योग चतुष्टय भारतीय दर्शनों में प्रसिद्ध है। स्वामी विवेकानन्दन भी योगचतुष्टय के विषय में अपने मत का प्रचार किया। उनका चारों योगों का समन्वय बहुत ही प्रसिद्ध है। उनके मत में एक एक योग मोक्ष लिए पर्याप्त है। सभी योगों का परमलक्ष्य तो योग ही है। इसलिए मोक्षलाभ के लिए यदि योगचतुष्टय को स्वीकार किया जाए तो इसमें कोई दोष नहीं है। लेकिन व्यावहारिक जीवन में योगचतुष्टय का समन्वय उनका इष्ट है ऐसा माना भी जाता है। यहाँ पर योगशब्द के अर्थ मोक्षलाभ के लिए जो निर्दिष्ट साधन मार्ग है तथा जो मार्ग परमात्मा के साथ जीवात्मा को जोडता है उसका वर्णन हैं।

27.8.1) कर्मयोग

गीता में कर्म योग अत्यन्त प्रसिद्ध है। कर्मयोग निष्काम भावना के द्वारा कर्तृत्व बुद्धि का परित्याग करके फलकामना राहित्य के साथ साधक द्वारा कर्तव्य कर्मों को किया जाना चाहिए। सामान्यत: सभी मानव यहाँ कार्य करुँगा तो मुझे यह फल मिलेगा, इस प्रकार की भावना से कर्म करते हैं। प्रत्येक कर्म का उनके लिए कोइ न कोइ अभिप्राय होता है। जैसे कोई स्वर्ग को जाने के लिए यज्ञ करता है ,कोई धनार्जन के लिए कार्य करता है। जो कार्य करता है उसकी यह कर्तृत्व बुद्धि यह होती हैं कि मैं कार्य करता हूँ। इस प्रकार से कर्तृत्व बुद्धिपूर्वक वह जो कार्य करता है उन सभी कर्मों का फल अवश्य होता है। उसका कर्म कर्ता के द्वारा भोगा जाता है। फिर शरीर धारण करना चाहिए। कर्मफल शुभ होता है तो कर्ता सुख को प्राप्त करता है तथा कर्मफल अशुभ होता है तो कर्ता दु:ख को प्राप्त करता है। संसार में स्थित व्यक्ति कर्मफल का अतिक्रमण करनें में समर्थ नहीं होता है। लेकिन यदि यही कर्म कर्तृत्व बुद्धि के द्वारा नहीं करके केवल निष्काम भावना के द्वारा किया जाए तो यह पल को जन्म नहीं दे सकती है। इसलिए निष्काम कर्म योग के द्वारा व्यक्ति बन्धते नहीं हैं। और तो निष्कामकर्म के द्वारा मानवों को आत्मज्ञान भी होता है।

भगवान वासुदेव के द्वारा भगवद्गीता में कहा भी गया है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-3)

इसलिए आसक्ति से रहित होकर के कर्तव्य कर्मों को सम्पादित करना चाहिए। प्रेमपूर्वक कर्म करना चाहिए। कर्मों के करने के लिए भी कर्म करना चाहिए। लघु बालकों को कुछ भी देते है तो यदि कुछ दिया जाता है तथा प्रतिदान के रूप में कुछ भी नहीं मांगा जाता है। इसी प्रकार से कर्म करना चाहिए उसके प्रतिदान के रूप में मन से कुछ भी नहीं मांगना चाहिए कर्म जब आध्यात्मिक उन्नति के लिए सहायक होता है तो वह योगपदवी को भी प्राप्त करवा देता है। यह ही कर्म योग है। हमारे द्वारा कर्म का त्याग करके एक क्षण भी रुका नहीं जा सकता है। कर्म यदि निष्काम भावना से हमारे द्वारा हो जाएँ तो हमें उन्हीं कर्मों से मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है।

अत: कर्मयोग का सभी मुमुक्षुओं के द्वारा हमेशा अनुष्ठान करना चाहिए।

27.8.2) ज्ञानयोग

ज्ञानयोग वस्तुत: वेदान्त दर्शन ही है। यह विचार का मार्ग है। मानवों का यथार्थ स्वरूप ढ़ककर के माया विराजमान है। यह सम्पूर्ण मायामय ही है। जगत में सभी माया के द्वारा समाच्छान्न होते हुए

ध्यान दें:

संसारचक्र में बार बार आते जाते रहतें है। माय का वह आवरण ज्ञान के द्वारा भस्म होकर के स्वयं के नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप के ज्ञान के द्वारा आत्मस्वरूप में जो प्रतिष्ठा करता है वह साधन मार्ग ही वस्तुतः ज्ञान योग होता है। माया ही अज्ञान है। अज्ञान के द्वारा भ्रान्त जीव आत्मा के स्वरूप नहीं जानते है। आत्मा के स्वरूप का क्या नाम है तो कहते हैं-

न जायते म्रियते वा कदाचित् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (श्रीमद्भगवद्गीता-2.20)
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते। (भगवद्गीता 2.23-24)

शरीर उत्पन्न होता है आत्मा तो उत्पन्न भी नहीं होती है। और न मरती है। वह तो तीनों कालों में नित्य रहती है। तथा तीनों कालों में अविकृतरूप से विद्यामान रहती है। आत्मा के स्वरूप को कहा नहीं जा सकता है। और नहीं चिन्तन किया जा सकता है। वह अविकार्य अचल होती हुई भी स्वर्ग को चली जाती है।

एक आत्मा नामरूपाधि के भेदों से बहुत्व के रूप में प्रतीत होती है। आत्मज्ञान होने पर सभी उपाधियाँ सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती हैं। उनके द्वारा बहुत्व के रूप में प्रतीयमान आत्मा भी अभिन्नत्व के द्वारा प्रतीत होती है। तब वह मुक्त पुरुष सभी वस्तुओं में आत्मा को ही देखता है। उसको मोह तथा शोक नहीं होता है। इस प्रकार से श्रुतियों में कहा है

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ इति,
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वम् अनुपश्यतः॥ इति च। (ईशोपनिषत् 6,7)

इस प्रकार से विचार पूर्वक ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश होने पर आत्मस्वरूप का जब ज्ञान होता है तब वह मुक्त जन सभी स्थानों पर आत्मा को देखते हुए प्रसन्न होता है।

27.8.3) भक्तियोग

चारों योगों में सबसे अन्यतम भक्तियोग होता है। भक्ति ईश्वर के प्रेम को कहते है। भगवान में परमप्रीति ही भक्ति है। भक्ति स्वयं ही साध्यरूपा तथा साधनरूपा होती है। साधनमार्गों में भक्तियोग का माहात्म्य ही जो परमलक्ष्यभूत ईश्वर की प्राप्ति के लिए यहाँ पर सभी की अपेक्षा से सरल तथा स्वभाविक मार्ग है। लेकिन निम्नस्तरीय भक्ति ही सङ्कीर्णता का बीज होती है। भक्ति दो प्रकार की होती है। शुद्धा भक्ति तथा गौणी भक्ति। गौंणी भक्ति वस्तुतः समान्यतया इष्ठ में निष्ठ होती है। मैं जिसकी उपासना करता हूँ वह ही श्रेष्ठ है उनकी अपेक्षा अन्य मेरे लिए नहीं है इस प्रकार का भाव गौंणी भक्ति में होता है। यह एक प्रकार से अपक्व भक्ति होती है। पक्व भक्ति में तो घृणायुक्त बुद्धि तो होती ही नहीं है। तब तो केवल सभी भूतों में प्रेम का अनुभव ही होता है। वह वस्तुतः शुद्ध भक्ति होती है।

भक्ति के विषय में यह शाण्डिल्य सूत्र है "सा परानुर्कितरीश्वरे" इस प्रकार से अविच्छिन्न तैलधारा के समान ध्येय ईश्वर के निरन्तर स्मरण के द्वारा बन्धनों का नाश हो जाता है। स्मरणदृढ़ होने पर परोक्षानुभूति होती है। वह ही मुक्ति का कारण होता है। भगवद्गीता में कहा भी गया है कि भगवान में मन तथा बुद्धि को लगाकर के अनन्य योग के द्वारा निरन्तर भगवान का स्मरण ही भक्ति होती है। भक्त ही भगवान का अत्यन्त प्रिय होता है। तथा भगवान भक्त को इसी प्रकार से चलाते है जिसके द्वारा भक्त

ध्यान दें:

भगवान को प्राप्त करें। अत: भगवद्गीता में कहा है

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ इति।

कठोपनिषद् में भी यह कहा गया है की आत्मन के प्रिय भक्त के स्वरूप यह दिखाई देता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य: न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्तैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥ इति।

इस प्रकार से भक्ति योग के द्वारा भगवान के अनुग्रह से भगवान का साक्षात्कार करके मोक्ष को प्राप्त करता है यही भक्ति योग मोक्ष का साधक होता है। इसमें कोई संशय नहीं है।

27.8.4) राजयोग

राजयोग प्रधान रूप से साधनों का उपदेश देता है। पातञ्जल्य योगसूत्र ही यहाँ पर मुख्य है। प्रत्येक योगमार्गों के समान ही राजयोग का भी लक्ष्य परमपुरुषार्थ का लाभ प्राप्त करना है वह ही मोक्ष तथा समाधि को प्राप्त करता है। मन का संयम ही वस्तुत: राज योग का उद्देश्य है। बार बार अभ्यास के द्वारा मन संयमित हो जाता है। संयमित एकाग्र मन के द्वारा ही परमतत्वरूप के साक्षात्कार से समाधि अधिगत होती है। जिससे इस योग का नामान्तर अभ्यास योग है। समाधि के लाभ के लिए भी इस योग से आठ अङ्गो का उपदेश दिया गया है उनकों अष्टङाग योग कहते हैं। वे अष्टाङ्ग योग हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। यम से तात्पर्य है अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, तथा अपरिग्रह। नियम से तात्पर्य है शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान। शरीर के अङ्गो के द्वारा कमल तथा स्वस्तिकादि के चिन्ह बनाकर के लम्बे समय तक यदि उनमें रुका जाता है वह आसन कहलाता है। प्राणायाम रेचक पूरक तथा कुम्भक के माध्यम से प्राणों के निग्रह करने का उपाय है। इन्द्रियों को अपने अपने विषयों से हटा करके स्वयं में उन्मुखी करना ही प्रत्याहार कहलाता है। एक ही विषय में चित् का धारण ही धारणा होती है। तथा परमात्मा में मन की तेलधारा के समान स्थिति ध्यान कहलाती है। एकाग्रमन से चित्तवृत्तियों के निरोध के द्वारा आत्मवस्वरूप में स्थिति समाधि होती है। इन सभी अङ्गों का क्रमानुसार अनुष्ठान करना चाहिए।

राजयोग ही आन्तरिक विज्ञान होता है। हमारी अन्त: स्थिति का ज्ञान कब किस प्रकार से प्रकाशित होगा इसकी जो वैज्ञानिक प्रक्रिया को बताता है वह राजयोग होता है। वस्तुत: अन्त: करण के संयम का नाम ही राज योग है। मन जब संयमित होता है तो आत्मज्ञान प्रकाशित होता है। मन तब ही संयमित होता है जब प्राण का निग्रह किया जाता है। प्राण के निग्रह के लिए प्राणायाम का नियमानुसार पालन करना चाहिए। प्राणायाम के द्वारा चित्त देह पवित्र तथा निर्मल होते हैं। प्राणायाम के तीन अङ्ग होते है। पूरक, कुम्भक तथा रेचक। जिसमें श्वास को ग्रहण किया जाता है वह पूरक कहलाता है। जिसमें श्वास को रोका जाता है वह कुम्भक कहलाता है। जिसमें श्वास को त्यागा जाता है। वह रेचक कहलाता है। मनुष्य के मेरु डण्ड में मस्तिष्क से लेकर के अधोभग तक दो नाड़ी होती है ईडा तथा पिङ्गला। इन दोनों में शक्ति प्रवाह होने पर देह में सभी जगह शक्ति प्रवाह होता है। शक्ति हमारे शरीर में स्थित चक्रों में सञ्चित होती है। हमारे शरीर में सात चक्र होते हैं। वे हैं मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, आज्ञा तथा सहस्रार। सहस्रार चक्र मस्तिक में होता है। आज्ञाचक्र दोनों भौहों के बीच में होता है। विशुद्ध चक्र कण्ठ में होता है। अनाहत चक्र हृदय में होता है। मणिपुर चक्र नाभि में होता है। स्वाधिष्ठान चक्र उदर के निम्नदेश मे होता है। मूलाधार मेरूदण्ड के निम्नदेश में होता है। इन चक्रों का योगियों की योगियों के द्वारा सुप्त तथा पद्म रूप में कल्पना की गई है। मेरुदण्ड के निम्नदेश में प्रजननशक्ति आधारभूत मूलाधार

ध्यान दें:

चक्र में होती है। वहाँ पर कोई छोटा सर्प सोता हुआ कुण्डली के आकार में होता है इस प्राकर से योगियों ने कल्पना की भी है। इसी को ही कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। इस निद्रित सर्प के जगने को ही कुण्डलिनी शक्ति का जागरण कहते हैं। सबसे पहले प्राणायम के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण करना चाहिए। उसके बाद एक एक चक्र को भेदकर के कुण्डलिनी शक्ति को सुषुप्ति मार्ग के द्वारा मस्तिष्क में प्रेरित करना चाहिए। जब सुषुप्ति मार्ग के द्वारा शक्ति सहस्रार चक्र का स्पर्श करेगी तब आत्मज्ञान होगा।

27.9) शिवज्ञान के द्वारा जीव की सेवा

सेवाभाव ही विवेकानन्द के दर्शन का अन्यतम तथा प्रधान विषय है। सेवाभाव यहाँ पर सामान्य सेवाभाव नहीं होता है। अपितु शिवज्ञान के द्वारा जीव की सेवा ही जीव सेवाभाव है। शिवज्ञान के द्वारा जीवसेवा इसका अर्थ जीवो में शिवत्व का आरोप करके जीव साक्षात् शिव की सेवा करता है। जीव साक्षात् ईश्वर होता है। जीव तथा ईश्वर में लेश मात्र भी भेद नहीं है। यह शास्त्रों के द्वारा भी सिद्ध है। लेकिन सामान्य व्यक्ति के द्वारा उस प्रकार का अनुभव सम्भव नहीं होता है। विरले कुछ ही मुक्त पुरुषों कों उस प्रकार का अनुभव होता है। विवेकानन्द ने ही सेवाभाव को साधनमार्ग के द्वारा संसूचित किया है। विवेकानन्द के मत में व्यावहारिक जीवन से आध्यत्मिक जीवन अलग नहीं होता है।

व्यावहारिक जीवन को ही अध्यात्ममय करना चाहिए। तथा आध्यात्मिक भावना ही व्यवाहिरक जीवन में प्रयुक्त होना चाहिए। उसके द्वारा आत्मोन्नति जल्दी होती है। उनके मत में शास्त्रोक्त रीति के द्वारा ईश्वर अनिर्देश्य होता है।लेकिन अनिर्देश्य ईश्वर का अधिष्ठान जीव ही होते हैं। इसलिए यदि जीव की पूजा की जाए तो वह अनिर्देश्य ईश्वर की ही पूजा होती है। ईश्वर ही जीवरूप के द्वारा आत्मा को प्रकाशित करता है। इसलिए मन्दिरों में पूजा की अपेक्षा साक्षात् अभुक्त नररूपी नारायण की ही भोजन औषधि आदि से पूजा करनी चाहिए। उसके द्वारा ही वस्तुतः ईश्वर की पूजा होती है। इसलिए उन्होंने अपने पद्य में कहा है-

क्वेशम् अन्वेषति वक्त्वा बहुरूपैः पुरःस्थितम्।
जीवे प्रेम हि यस्यास्ति स ईश्वरं हि सेवते॥ इति।

इसका यह अर्थ है कि है मित्र दरिद्रानामरूप समीपस्थित ईश्वर को त्यागकर के तो ईश्वर का कहाँ पर चिन्तन करता है। जिस जीव में प्रेम होता है वह ही ईश्वर की सेवा करता है। वेवेकानन्द का यह सेवा भाव ही किसी साधक की आध्यात्मिक उन्नति के लिए तथा व्यावहारिक जीवन की उन्नति के लिए कल्पित है। जिस प्रकार से भूखे को भोजन बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। तथा भूखे के अन्दर धर्म भी नहीं होता है इस प्रकार से रामकृष्ण के द्वारा कह गया है। इसलिए सबसे पहले दरिद्रों के लिए भोजन औषधि निवास स्थान तथा शिक्षा देनी चाहिए। उसके बाद में धर्म सिखाना चाहिए। उसी के द्वारा ही वस्तुतः धर्म प्रदान करना सार्थक होगा। अन्य किसी प्रकार से भी नहीं। इस प्रकार से विवेकानन्द का सेवा भाव ही वस्तुतः उनके दर्शन के विशिष्ठ्य में अन्यतम है। इस प्रकार से सेवा भावना के द्वारा यदि यथार्थरूप से कार्य को किया जा सकता है तो चित्त शुद्धि शीघ्र ही हो जाती है। निर्मलचित्त में ही आत्मतत्व हमेशा प्रकाशित होता है। इस प्रकार से विचार करके ही उन्होंने अपने द्वारा प्रतिष्ठित संन्यासी संघ के आदर्श रूप में यह वचन दिया " आत्म मोक्ष के लिए हैं तथा जगत् के लिए है "। न केवल स्वार्थान्ध व्यक्ति के जैसे स्वयं के मोक्ष के लिए प्रयास करना चाहिए अपितु जगत के हित के भी करना चाहिए। जगत के हित के साधक ही आत्म का मोक्ष भी सम्पादित करना चाहिए। इस प्रकार की उनकी भावनाएँ थी।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न 27.3

1. विवेकानन्द के मत में आध्यात्मिकप्रपञ्च में प्रमाणभूत क्या है?
2. विवेकानन्द के द्वारा वर्णित चार प्रकार के योग कौन-कौन से हैं?
3. योग शब्द का क्या अर्थ होता है?
4. विवेकानन्द के मत में भक्ति किसे कहते हैं?
5. विवेकानन्द के मत में भक्ति कितने प्रकार की होती है?
6. विवेकानन्द के मत में योगियों के मतानुसार कितने चक्र होते हैं? तथा वे कौन-कौन से होते हैं।
7. विवेकानन्द के मत में प्राणायाम की क्या प्रक्रिया होती है।
8. यम किसे कहते हैं?
9. नियम किसे कहते हैं?

पाठ सार

विवेकानन्द स्वयं भले ही संन्यासी थे फिर भी उनका उपदेश सभी स्तरों के तथा सभी सम्प्रदायों के मानवों के लिए था। उन्होंने अपने गुरु श्री रामकृष्ण से शिक्षा प्राप्त करके उसे धर्मसमन्वय के रूप में सभी देशों में प्रचारित किया। उनके दर्शन में श्रीरामकृष्ण का महान प्रभाव देखा जा सकता है। विवेकानन्द का यही कहना था कि शास्त्रों को केवल पढना ही नहीं चाहिए अपितु अपने जीवन में उसके उपदेशों का पालन भी करना चाहिए। जीवन के संग्राम शास्त्र यदि उपकारक नहीं होते हैं तो फिर शास्त्र का मूल्य ही क्या है। भले ही शास्त्र प्रत्येक क्षण हमारा ही उपकार करते है। फिर हमारे द्वारा उनको नहीं जाना जात है। स्वामिविवेकानन्द ने कहा है "वेदान्त के महान् तत्वों को केवल वनों और गुफाओं में ही नहीं होना चाहिए अपितु विचार के समय भोजनालय में, गरीब घर में, धीवर के घर में छात्र के अध्ययन स्थल में सभी जगहों पर ये तत्व आलोचित भी होना चाहिए। धीवर भी यदि आत्मत्व के द्वारा स्वयं का चिन्तन करता है तो वह उत्तम धीवर होगा। विद्यार्थी भी यदि आत्मतत्व का चिन्तन करेगा तो वह उत्तम विद्यार्थी होगा।

शिवज्ञान के द्वारा जीव सेवा का आदर्श होने पर भी व्यावहारिक वेदान्त का फलीभूत अंश होता है। स्वामीविवेकानन्द के कर्मदर्शन भी अपूर्व है। स्वार्थ रहित कर्मों के द्वारा मनुष्य आध्यात्मिकता के उच्चतम सोपानों पर आरूढ होकर समर्थ रूप से यहाँ पर प्रतिपादित किया गया है। कर्म ज्ञान भक्ति तथा राजयोग का समन्वय भी उसका इष्ट होता है। रामकृष्णमिशन् इसके प्रतीक रूप में समन्वय के द्वारा अच्छे से प्रदर्शित है।उनके दर्शन का सारभूत तत्व यह ही है " आत्मा मोक्ष के लिए है तथा जगत् के हित के लिए है "। इस प्रकार से श्री रामकृष्ण तथा विवेकानन्द के दर्शन का परस्पर परिपूर्ण सूक्ष्म एक ही विचार है।

आपने क्या सीखा

- विवेकानन्द के विषय में सामान्य ज्ञान
- विवेकानन्द दर्शन के विषय में जाना

ध्यान दें:

- विवेकानन्द दर्शन में श्रीरामकृष्ण के प्रभाव को जाना
- विवेकानन्द का सेवाभाव जाना
- योग चतुष्टय में विवेकानन्दकृत समन्वय को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. विवेकानन्द के विषय में लघु विवरण दीजिए।
2. विवेकानन्द के वेदान्त का क्या नाम है?
3. कर्मयोग किसे कहते है?
4. विवेकानन्द के दर्शन में समन्वय किस प्रकार का समन्वय था?
5. अपरोक्षानुभूति किसलिए अध्यात्मिक प्रपञ्च का प्रमाण होती है।
6. भक्ति किसे कहते हैं?
7. भक्ति योग के विषय में लघु टिप्पणी कीजिए।
8. विवेकानन्द के दर्शन के ज्ञान के लिए पृष्ठभूमि का विचार कीजिए।
9. विवेकानन्द के दर्शन के लिए श्रीरामकृष्णदर्शन किसलिए आवश्यक है इसका विस्तार से विचार कीजिए।
10. विवेकानन्द के दर्शनानुसार सेवा भाव का वर्णन कीजिए।
11. लघु टिप्पणी लिखिए-शिवज्ञान तथा जीवसेवा।
12. ज्ञानयोग का समास विधि से परिचय दीजिए।
13. राजयोग का परिचय लिखिए।
14. अष्टाङ्ग योग क्या होते हैं? अष्टाङ्ग योगों का परिचय दीजिए।
15. चारों योगों का समन्वय विवेकानन्द के दर्शनानुसार कीजिए।
16. विवेकानन्द के दर्शन का मूलवैशिष्ट्य संक्षेप में लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 27.1

1. नरेन्द्रनाथ।
2. श्रीरामकृष्ण।
3. विवेकानन्द ने वेदान्तवाक्यों का आश्रय लेकर के ही दर्शनों का प्रचार किया।
4. 1863-ईस्वी जनवरी माह का 12-दिनाङ्क। 1893।
5. 1893 ईसवी
6. नव्यवेदान्त।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 27.2

1. श्री रामकृष्ण का।
2. रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्। नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।
3. सभी स्तर के मानवों की आध्यात्मिक उन्नति ही आध्यात्मिक उन्नति है इस प्रकार से विवेकानन्द के दर्शन का लक्ष्य है।
4. ईश्वर साकार, निराकार, साकार तथा निराकार के द्वारा भिन्न भी, तथा वह इस प्रकार से ऐसा है ऐसा नहीं कहा जा सकता है।
5. सोपाधिक ब्रह्म तथा निरूपाधिक ब्रह्म।
6. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति, इस प्रकार का श्रुति वाक्य है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 27.3

1. अपरोक्षानुभूति।
2. कर्मयोग ज्ञानयोग भक्तियोग तथा राजयोग।
3. योग शब्द का अर्थ ही मोक्षलाभ के लिए निर्दिष्ट साधन मार्ग है जो मार्ग परमात्मा के साथ जीवन से जुडा हुआ है।
4. भगवान में परम प्रीति ही भगवान की भक्ति है।
5. भक्ति दो प्रकार की होती है शुद्धा तथा गौंणी।
6. सात चक्र है मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत,विशुद्ध, आज्ञा तथा सहस्रार।
7. तीन होते है, पूरक कुम्भक तथा रेचक।
8. यम है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह।
9. नियम है सोच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान।